समाज ही नहीं शैक्षिक संस्थाओं में जेण्डर भेद की समस्या विद्यमान है और ये संस्थान इन समस्याओं को चुनौती नहीं दे पा रहे हैं। इसकी एक वजह शिक्षकों और अध्यापक प्रशिक्षकों में जेण्डर की समस्याओं पर समझ और जागरूकता का अभाव होना है। यह लेख शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के अवलोकन के दौरान उभरे जेण्डर भेद के मुद्दों को उजागर करता है।

अध्यापक शिक्षा में जेण्डर के सवाल

शिखा गिल

परिचय

दिल्ली विश्वविद्यालय से बीएलएड और अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली से मनोविज्ञान में एमए किया है। वर्तमान में अंबेडकर विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में पीएचडी कर रही हैं। दिगन्तर, जयपुर के सेन्टर फोर टीचर नॉलेज में शोधकर्ता के रूप में कार्य किया है।

भारत ही नहीं दुनिया भर के आधुनिक कहे जाने वाले जटिल समाजों में गैरबराबरी कायम है। यह गैरबराबरी समाज में वर्ग, धर्म, जाति, नस्ल, जेण्डर आदि के रूप में विद्यमान है। ये विभिन्न वर्ग सामाजिक स्तर पर मौजूद अमूर्त छवियां भर नहीं होतीं बल्कि ये इंसान के मन का हिस्सा बनकर उसके जीवन में अहम भूमिका अदा करने लगती हैं। लोकतांत्रिक समाजों ने समानता के मूल्य को प्रमुखता के साथ अपनाया है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में भी संविधान हर इंसान को बराबरी का हक प्रदान करता है। कोई भी समाज सही मायने में तभी तरक्की और अमन कायम कर सकता है जब सभी को बराबरी का हक प्राप्त हो। यह उम्मीद की जाती रही है कि शिक्षा का प्रचार-प्रसार समाज में व्याप्त इस गैरबराबरी को मिटाने में मददगार होगा लेकिन आधुनिक शिक्षा के लम्बे इतिहास में शिक्षा के माध्यम से इसे मिटा पाना मुमकिन नहीं हो पाया है। इसकी वजहों की पड़ताल एक जटिल सामाजिक विश्लेषण में ले जाती हैं। मैं इस लेख में शिक्षा के एक सीमित संदर्भ में इसकी छानबीन करने का प्रयास करूंगी।

समाज में जेण्डर गैरबराबरी का लम्बा इतिहास है। भौतिक और प्रतीकात्मक संसाधनों के बंटवारे का परिणाम आर्थिक और सामाजिक असमानता रही है। यह असमानता समाज में व्यक्ति या समूह की भूमिकाओं और हैसियत को निर्धारित करती है। कोई भी समाज किस प्रकार संगठित है, यह महिलाओं या पुरुषों को खास तरह से गढ़ने में मदद करता है। समाज में जेण्डर की भूमिकाएं सामाजिक संस्थाओं और दैनिक अन्तःक्रियाओं के माध्यम से आकार ग्रहण करती हैं। नई पीढ़ी सामाजीकरण के जरिए समाज में प्रचलित इन जेण्डर भूमिकाओं को आत्मसात करती है और उन्हें या तो स्थायित्व प्रदान करती है या चुनौती देती है। किसी भी समाज में गैरबराबरी कैसे कायम रहती है और शिक्षा उसे किस तरह स्थायित्व प्रदान करती है, इसके उदाहरण मुझे एक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के अवलोकन के दौरान मिले। मैं अपने इसी अनुभव के आधार पर शिक्षा में जेण्डर की समस्या पर चर्चा करूंगी।

राजस्थान के एक ग्रामीण क्षेत्र में मौजूद एक सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में एक शिक्षक प्रशिक्षक ने समाज में आ रहे बदलावों, खुलेपन और आधुनिकता की आलोचना कुछ इस प्रकार कीः

''रामचन्द्र कह गए सिया से, ऐसा कलयुग आएगा
बेटी बाप संग नाचेगी, बाप खड़ा हर्षाएगा।''

यह संस्थान में कहा गया पैरोडी टाइप दोहा था जो प्रशिक्षक की व्यापक विश्वदृष्टि को यदि छोड़ भी दें तो शाब्दिक रूप से जेण्डर के प्रति शिक्षक प्रशिक्षक के नजरिए को दर्शाता है। यह पैरोडी भावी अध्यापकों को यह संप्रेषित करने का प्रयास करती है कि लड़की को पिता से दूर रहना चाहिए। इसके साथ ही पिता पर भी व्यंग्यात्मक टिप्पणी करती है कि लड़कियों को आजादी देना सरासर गलत है और यह कलियुग की निशानी है। यह कहना गलत नहीं होगा कि स्वयं की शिक्षा और पेशेवर प्रशिक्षक होने के बावजूद समाजीकरण का असर जेण्डर पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं कर पाया है।

इस शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में अवलोकन के दौरान मैंने पाया कि बहुत-सी अदृश्य रेखाएं जेण्डर फर्क को कायम रखने में मदद करती हैं। पूरे संस्थान में जिस तरह की व्यवस्थाएं थीं वे अनकहे जेण्डर भेद को कायम रखने वाली थीं। सामूहिक रूप से प्रातःकालीन सभा/प्रार्थना सभा या अन्य सामूहिक कार्यक्रमों में महिला और पुरुषों को एकत्रित होना जेण्डर भेद को दर्शाता है। प्रातःकालीन सभा में महिलाएं आगे पंक्ति बनाकर बैठती हैं और पुरुष कुछ अन्तराल के बाद पीछे बैठते हैं। महिलाएं प्रार्थना करवाती हैं और पुरुष निर्देश देते हैं जिनका बाकी सभी पालन करते हैं। कामों का यह बंटवारा बाहरी समाज में जेण्डर के अनुसार तय कर दिए गए रूढ़ कामों और छवियों के अनुरूप ही प्रतीत होते हैं।

इस तरह की व्यवस्थाओं को देखकर लगता है कि शिक्षक इन दैनिक व्यवहारों के प्रति जागरूक नहीं हैं और न ही कभी इन्हें प्रश्नित करते हैं। कक्षाओं के अन्दर भी इसी तरह की बैठक व्यवस्था जेण्डर फर्क को दर्शाने वाली होती है। महिलाएं एक तरफ बैठती हैं और पुरुष दूसरी तरफ। दोनों की पंक्तियों के बीच एक विभाजक रेखा होती है। कक्षा के दौरान परस्पर सीखने के लिए अन्तःक्रिया लगभग मुमकिन नहीं होती। यह जरूरत न तो प्रशिक्षु अध्यापकों को लगती है और न ही प्रशिक्षक अध्यापक को। दो समान्तर दुनियाएं बिना एक-दूसरे से संपर्क-संवाद के एक ही कक्ष में मौजूद रहती हैं।

अवलोकन के दौरान यह देखा गया कि अध्यापक का नजरिया लड़कियों के प्रति सामान्यतया यही होता है कि वे नाजुक और कोमल होती हैं। उन्होंने कक्षा में कहा कि लड़कियों को नहीं पीटना चाहिए क्योंकि वे नाजुक होती हैं। कक्षा में लड़कियां अपने कार्यों को अलग समूह में करती हैं और पुरुष अलग समूह में। कक्षा में मिले कार्य के लिए कुर्सी-टेबिलों को नए ढंग से व्यवस्थित करने के लिए पुरुषों को निर्देश दिया गया।

औपचारिक कक्षाओं के अंदर शिक्षक इस तरह के उदाहरणों का इस्तेमाल करते हैं जो न सिर्फ जेण्डर फर्क को प्रकट करते हैं बल्कि महिलाओं पर शिक्षा के नकारात्मक प्रभावों को प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, एक शिक्षक प्रशिक्षक ने अपनी कक्षा के दौरान कहा कि एक लड़की ने पढ़ाई करके अपने पति को छोड़ दिया और किसी दूसरे पुरुष के साथ चली गई क्योंकि उसे पता चल गया था कि सरकार और कानून उसका साथ देंगे, पति उसका क्या कर लेगा। इसके मायने यही निकाले जा सकते हैं कि शिक्षा से आने वाली जागरूकता का प्रभाव महिलाओं के ऊपर नकारात्मक ही होते हैं। अनकहे ही शायद यह भी कहा गया कि लड़कियों को पढ़ाने की जरूरत नहीं है क्योंकि इससे वे परिवार को सुनियोजित ढंग से चलाना बंद कर देती हैं। नतीजतन वे अपने तौर-तरीकों से निर्णय लेने लगती हैं। लगता है कि स्त्रियों को आजादी नहीं देने वाले पैरोकार समाज को एक ही ढर्रे पर चलते हुए देखना चाहते हैं। यदि उसमें किसी तरह का विचलन होता है तो इससे उन्हें परेशानी होती है। स्त्रियों के द्वारा अपनी आजादी चाहने के लिए किए जाने वाले प्रयास उन्हें नागवार गुजरते हैं। स्त्रियों की आजादी को रोकने की बहुत-सी कोशिशें समाज में आए दिन होती हैं।

महिलाओं पर होने वाले हमले या खाप पंचायत की बंदिशें स्त्रियों की आजादी को नियंत्रित करने के औजार हैं जिन्हें अनेक बार स्त्री की सुरक्षा के नाम पर किया जाता है तो अनेक बार परंपरा के नाम पर। महिलाओं की आजादी को नियंत्रित करने के ऐसे ही अनेक वैचारिक औजारों का प्रयोग इस शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में सुनने-जानने को मिल सकते हैं। यह मानसिकता न सिर्फ रूढ़ और प्रतिगामी है बल्कि महिलाओं को मिल सकने वाले अवसरों से भी रोकती है।

यह माना जाता रहा है कि जेण्डर भूमिकाओं का फर्क जैविक आधारों पर हुआ है। समाजशास्त्रीय विश्लेषणों से यह प्रकट हुआ है कि जेण्डर भूमिकाएं जैविक नहीं बल्कि पितृसत्तात्मक समाज संरचना की देन हैं। सामान्यतया इस तरह के विचार-विमर्श में लिंग और जेण्डर के फर्क को अनदेखा कर दिया जाता है। कोई भी व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि जैविक रूप से महिला और पुरुष एक-दूसरे से भिन्न होते हैं और दोनों की शारीरिक संरचनाओं में फर्क होता है। यह फर्क जैविक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और अनेक मायनों में महिलाओं की विशेष भूमिकाओं को निर्धारित भी करता है लेकिन क्या यह फर्क सामाजिक भूमिकाओं और हैसियत के फर्क को भी पैदा करता है?

समाजशास्त्रियों का मानना है कि जेण्डर की संरचना सामाजिक है। अर्थात सामाजीकरण के माध्यम से महिला या पुरुष की भूमिकाएं तय होती हैं और यह जन्म के बाद ही होने लग जाता है। सामाजिक संस्थाएं जैसे कि परिवार, स्कूल, कार्यस्थल और मीडिया आदि यह बताते हैं कि लड़की को खास तरह से व्यवहार करना चाहिए। उदाहरण के लिए, बचपन से ही यह सिखाया जाता है कि लड़कियों/महिलाओं को देखभाल करने वाला होना चाहिए तथा परिवार का सम्मान और लज्जा का ख्याल करना चाहिए। वहीं लड़कों को साहसी और स्वतंत्र माना जाता है। जब व्यक्ति इन भूमिकाओं को आत्मसात करने लगता है तभी समाज में जेण्डर की निर्मिति होती है और ये पीढ़ी दर पीढ़ी कायम रहने लगती हैं।

स्त्रीवादियों का तर्क है कि जेण्डर के इस भेद की वजह से लड़कियां सिर्फ शिक्षा व्यवस्था में ही वंचित नहीं रहतीं बल्कि वे अपने रोजमर्रा के व्यवहार में अधीनस्थता और स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व की वर्चस्वशाली विचारधाराओं को आत्मसात करके उन्हें स्वीकार करना भी सीखती हैं। इसका नतीजा यह होता है कि लड़के-लड़कियां रूढ़ छवियुक्त जेण्डर भूमिकाओं को आत्मसात कर लेते हैं और लड़कियां स्वयं को लड़कों से कम महत्त्वपूर्ण समझने लगती हैं। इसी विचारधारा के चलते लड़कियां अपने को लड़कों की बनिस्बत गणित और विज्ञान जैसे विषयों में कम बेहतर मानने लगती हैं। यह कितना सच है, इसे तमाम अध्ययनों में चुनौती दी गई है लेकिन एक मान्यता के रूप में यह लोगों और स्वयं लड़कियों के दिमाग में जगह बनाने लगता है। इसी का नतीजा होता है कि लड़कियां अधिकांशतः अपने लिए ऐसे विषयों का चुनाव करती हैं जो इन सामाजिक भूमिकाओं के साथ माकूल बैठते हों। परिणामतः रोजगार की दुनिया में उनके लिए रोजगार के अवसर सीमित हो जाते हैं। यहां किसी तरह का सरलीकृत सामन्यीकरण करना मकसद नहीं है, न ही मैं यह कहना चाहती हूं कि लड़कियां किसी तरह लड़कों से कमतर होती हैं। मेरा मकसद उस हकीकत को पेश करना है जिसे समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक अध्ययनों ने उजागर किया है। यह दर्शाता है कि सामाजीकरण के माध्यम से अर्जित की गई छवियों से एक मानसिकता निर्मित होती है जो उनकी अस्मिता को गढ़ने में मदद करती है। आजकल महिलाओं द्वारा चुने जा रहे रोजगार, पेशेवर क्षेत्र और व्यवसाय उन सभी क्षेत्रों में हो रहे हैं जिनमें पहले लड़कियों का जाना या तो मुमकिन नहीं था। लेकिन फिर भी आमतौर पर भारत जैसे देश में जहां शिक्षा का स्तर अभी कम है, वहां इसे अमान्य नहीं किया जा सकता।

इन सभी वर्चस्वशाली विचारधाराओं और चिन्तन को स्त्रीवादी एवं सामाजिक शोधों ने चुनौती दी है लेकिन यह अभी भी हमारे समाज में व्याप्त हैं। लड़के और लड़की की भूमिकाओं और हैसियत के फर्क को स्वभाविक घटना की तरह मानकर चला जाता है। यहां यह कहना आवश्यक है कि जेण्डर की समस्या सिर्फ महिलाओं/लड़कियों की ही समस्या नहीं है बल्कि यह एक सामाजिक समस्या है।

शिक्षा में जब जेण्डर भेद की बात की जाती है तो यह समझा जाता है कि कक्षा में यह भेद बच्चों के सामाजीकरण से आता है। यह सच्चाई है लेकिन यह प्रश्न हमारा ध्यान शिक्षा के लक्ष्यों और समाज में शिक्षा की भूमिका पर चिन्तन की ओर ले जाता है। यदि हम यह मान लें कि शिक्षा का काम यथास्थिति को कायम रखना है तो शायद इसमें किसी को कोई समस्या नहीं दिखाई देगी। लेकिन यदि हम यह मानें कि शिक्षा का काम इस तरह की समस्याओं को चुनौती देना है और शिक्षार्थियों में आलोचनात्मक चिन्तन की क्षमताएं विकसित करना है तो शिक्षक का कार्य हो जाता है कि वह स्वयं इन समस्याओं को आलोचनात्मक नजरिए से समझे और अपने शिक्षार्थियों को भी आलोचनात्मक नजरिए से देखना सिखाए।

इस लिहाज से शिक्षक का सेवापूर्व प्रशिक्षण महत्त्वपूर्ण हो जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तिओं को इस हकीकत को स्वीकारना चाहिए कि सामाजीकरण की प्रक्रिया के जरिए शिक्षक भी उसी मूल्य व्यवस्था का उत्पाद होते हैं जिन्हें प्रश्नित किया जाना या जिन पर आलोचनात्मक समझ विकसित करना शिक्षा का दायित्व है। जाति, धर्म, जेण्डर और वर्ग के बारे में शिक्षक धारणाएं भी लगभग वैसी ही होती हैं जैसी एक आम आदमी की होती हैं। यदि शिक्षकों की इस बारे में स्पष्ट समझ नहीं होगी तो बच्चों के बीच इन्हें चुनौती दे पाना मुमकिन नहीं होगा। इसलिए यदि शिक्षक प्रशिक्षण शिक्षक निर्माण की प्रक्रिया में इन्हें चुनौती नहीं दे पाते हैं तो शिक्षक यथास्थिति को बनाए रखने में ही मदद करेंगे। आज के सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण इन समस्याओं से लगभग बेखबर हैं।

यदि हम समानता और हमारे संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप समाज की रचना करना चाहते हैं तो शिक्षक प्रशिक्षणों के बारे में नई दृष्टि से सोचने की आवश्यकता होगी। शिक्षक प्रशिक्षण ही वह औजार हो सकता है जिसके जरिए न सिर्फ हम शिक्षकों के सामाजीकरण को प्रश्नित कर उन्हें लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति संवेदनशील और जागरूक बना सकते हैं बल्कि इसके माध्यम से स्कूलों में आने वाली पीढ़ियों को भी इन समस्याओं के प्रति जागरूक और संवेदनशील बना सकते हैं।

अतः शिक्षक शिक्षा के लिए न सिर्फ यह आवश्यक है कि पहले से मौजूद पाठ्यचर्या का गहन विश्लेषण किया जाए बल्कि एक ऐसी पाठ्यचर्या रूपरेखा निर्मित की जाए जो जेण्डर ही नहीं जाति, संप्रदाय, क्षेत्र और नस्ल जैसी समस्याओं पर भावी शिक्षकों का विवेकसम्मत नजरिया विकसित करने में मदद करे। शिक्षक शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का पोजीशन पेपर कहता है कि ''शिक्षक को विभिन्न संदर्भों से आने वाले सीखने वालों की जीवन्त दुनिया के प्रति संवेदनशील बनाना है तो उन्हें अपने सामाजीकरण के आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन को अपनी काबिलियत को बढ़ाने के लिए इस्तेमाल करना होगा''। (जेण्डर इश्यूज इन एज्युकेशन, राष्ट्रीय फोकस ग्रुप का पोजीशन पेपर 3.2 पृष्ठ xi)।

इसी तरह की काबलियत अर्जित करके वे जेण्डर जैसी समस्याओं को सुलझाने के प्रति कुछ सकारात्मक कदम उठा सकते हैं जिससे आलोचनात्मक चिन्तन को बढ़ावा मिले और ''जेण्डर की पदानुक्रमिकता के केन्द्र में स्थित सत्ता संबंधों पर सवाल उठाने की काबिलियत बढ़े।'' इससे ''अपने जीवन पर नियंत्रण स्थापित कर पाएं और स्वतंत्र इंसान की तरह अपने अधिकारों का दृढ़तापूर्वक उपयोग कर पाएं।''

(जेण्डर इश्यूज इन एज्युकेशन, राष्ट्रीय फोकस ग्रुप का पोजीशन पेपर 3.2 पृष्ठ 50)

यदि हम यह मान लेते हैं कि शिक्षक सामाजीकरण की प्रक्रिया के तहत उस मूल्य व्यवस्था को आत्मसात करते हैं तो इसका एक रास्ता यह है कि उनसे उस मूल्य व्यवस्था पर खुला संवाद कायम किया जाए और धीरे-धीरे उन्हें आलोचनात्मक समझ की ओर ले जाया जाए। शिक्षक प्रशिक्षण से इसकी एक शुरुआत हो सकती है। ◆